अंक : 3, सितम्बर 2017

LEISA INDIA

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण

लीज़ा इण्डिया

विशेष हिन्दी संस्करण
सितम्बर 2017, अंक 3

यह अंक लीज़ा इण्डिया टीम के साथ मिलकर जी०ई०ए०जी० द्वारा प्रकाशित की जा रही है, जिसमें लीज़ा इण्डिया में प्रकाशित अंग्रेजी भाषा के कुछ मूल लेखों का हिन्दी में अनुवाद एवं संकलन है।

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप
224, पुर्दिलपुर, एम०जी० कालेज रोड,
पोस्ट बाक्स 60, गोरखपुर-273001
फोन : +91-551-2230004
फैक्स : +91-551-2230005
ईमेल : geagindia@gmail.com
वेबसाइट : www.geagindia.org

ए.एम.ई. फाउण्डेशन
नं० 204, 100 फीट रिंग रोड, 3rd फेज, 2nd ब्लाक,
3rd स्टेज, बनशंकरी, बैंग्लोर- 560085 , भारत
फोन : + 91-080-26699512, +91-080-26699522
फैक्स : +91-080-26699410
ईमेल : leisaindia@yahoo.co.in

लीज़ा इण्डिया
लीज़ा इण्डिया अंग्रेजी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका है, जो इलिया की सहभागिता से ए.एम.ई. फाउण्डेशन बैंग्लोर द्वारा प्रकाशित होती है।

मुख्य सम्पादक
के.वी.एस. प्रसाद, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्ध सम्पादक
टी.एम.राधा., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

अनुवाद समन्वय
अर्चना श्रीवास्तव, जी.ई.ए.जी.
पूर्णिमा, ए.एम.ई. फाउण्डेशन

प्रबन्धन
रूक्मिणी जी.जी., ए.एम.ई. फाउण्डेशन

लेआउट एवं टाईपसेटिंग
राजकान्ती गुप्ता, जी.ई.ए.जी.

छपाई
कस्तूरी ऑफसेट, गोरखपुर

आवरण फोटो
जी.ई.ए.जी.

लीज़ा पत्रिका के अन्य सम्पादन
लैटिन अमेरिकन, पश्चिमी अफ्रीकन एवं ब्राजीलियन संस्करण

लीज़ा इण्डिया पत्रिका के अन्य क्षेत्रीय सम्पादन
तमिल, कन्नड़, उड़िया, तेलगू, मराठी एवं पंजाबी

सम्पादक की ओर से लेखों में प्रकाशित जानकारी के प्रति पूरी सावधानी बरती गई है। फिर भी दी गई जानकारी से सम्बन्धित किसी भी त्रुटि की जिम्मेदारी उस लेख के लेखक की होगी।

माइजेरियर के सहयोग एवं जी०ई०ए०जी० के समन्वयन में ए०एम०ई० द्वारा प्रकाशित

लीज़ा

कम बाहरी लागत एवं स्थायी कृषि पर आधारित लीज़ा उन सभी किसानों के लिए एक तकनीक और सामाजिक विकल्प है, जो पर्यावरण सम्मत विधि से अपनी उपज व आय बढ़ाना चाहते हैं क्योंकि लीज़ा के अन्तर्गत मुख्यतः स्थानीय संसाधनों और प्राकृतिक तरीकों को अपनाया जाता है और आवश्यकतानुसार ही बाह्य संसाधनों का सुरक्षित उपयोग किया जाता है।

लीज़ा पारम्परिक और वैज्ञानिक ज्ञान का संयोग है, जो विकास के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करता है। यह भी मुख्य है कि इसके द्वारा किसानों की क्षमता को विभिन्न तकनीकों से मजबूत किया जाता है और खेती को बदलती जरूरतों और स्थितियों के अनुकूल बनाया जाता है, साथ ही उन महिला एवं पुरुष किसानों व समुदायों का सशक्तिकरण होता है, जो अपने ज्ञान, तरीकों, मूल्यों, संस्कृति और संस्थानों के आधार पर अपना भविष्य बनाना चाहते हैं।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन, डक्कन के अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लघु सीमान्त किसानों के बीच विकास एजेन्सियों के जुड़ाव, अनुभव के प्रसार, ज्ञानवर्द्धन एवं विभिन्न कृषि विकल्पों की उत्पत्ति द्वारा पर्यावरणीय कृषि को प्रोत्साहित करता है। यह कम लागत प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के लिए पारम्परिक ज्ञान व नवीन तकनीकों के सम्मिश्रण से आजीविका स्थाईत्व को बढ़ावा देता है।

ए.एम.ई. फाउण्डेशन गांव में इच्छुक किसानों के समूह को वैकल्पिक कृषि पद्धति तैयार करने व अपनाने में सक्षम बनाने हेतु उनके साथ जुड़कर सघन रूप से काम कर रही है। यह स्थान अभ्यासकर्ताओं व प्रोत्साहकों के लिए उनकी देखने–समझने की क्षमता में वृद्धि करने हेतु सीखने की परिस्थिति के तौर पर है। इससे जुड़ी स्वयं सेवी संस्थाओं और उनके नेटवर्क को जानने के लिए इसकी वेबसाईट देखें–www.amefound.org

गोरखपुर एनवायरन्मेन्टल एक्शन ग्रुप एक स्वैच्छिक संगठन है, जो स्थाई विकास और पर्यावरण से जुड़े मुद्दों पर सन् 1975 से काम कर रहा है। संस्था लघु एवं सीमान्त किसानों, आजीविका से जुड़े सवालों, पर्यावरणीय संतुलन, लैंगिक समानता तथा सहभागी प्रयास के सिद्वान्तों पर सफलतापूर्वक कार्य कर रही है। संस्था ने अपने 30 साल के लम्बे सफर के दौरान अनेक मूल्यांकनों, अध्ययनों तथा महत्वपूर्ण शोधों को संचालित किया है। इसके अलावा अनेक संस्थाओं, महिला किसानों तथा सरकारी विभागों का आजीविका और स्थाई विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर क्षमतावर्धन भी किया है। आज जी0ई0ए0जी0 ने स्थाई कृषि, सहभागी प्रयास तथा जेण्डर जैसे विषयों पर पूरे उत्तर भारत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। इसकी वेबसाइट देखें (www.geagindia.org)

माइजेरियर वर्ष 1958 में स्थापित जर्मन कैथोलिक बिशप की संस्था है, जिसका गठन विकासात्मक सहयोग के लिए हुआ था। पिछले 50 वर्षों से माइजेरियर अफ्रीका, एशिया और लातिन अमेरिका में गरीबी के विरूद्ध लड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। जाति, धर्म व लिंग भेद से परे किसी भी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यह हमेशा तत्पर है। माइजेरियर गरीबी और हानियों के विरूद्ध पहल करने के लिए प्रेरित करने में विश्वास रखता है। यह अपने स्थानीय सहयोगियों, चर्च आधारित संगठनों, गैर सरकारी संगठनों, सामाजिक आन्दोलनों और शोध संस्थानों के साथ काम करने को प्राथमिकता देता है। लाभार्थियों और सहयोगी संस्थाओं को एक साथ लेकर यह स्थानीय विकासात्मक क्रियाओं को साकार करने और परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में सहयोग करता है। यह जानने के लिए कि स्थिर चुनौतियों की प्रतिक्रिया में माइजेरियर किस प्रकार अपनी सहयोगी संस्थाओं के साथ काम कर रहा है। इसकी वेबसाइट देखें (www.misereor.de; www.misereor.org)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं उसके पारिस्थितिकी तंत्र को पुनजीर्वित करने हेतु हाथ मिलाना

रमेश भाटी एवं शौर्यामॉय दास

भैंसों की स्थानीय प्रजातियों तथा पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करने हेतु चरवाहा समुदायों की मदद करने के लिए बहुत सी संस्थाएं आगे आयी हैं। इस सहभागिता से समुदायों को दूध के व्यवसाय के लिए बड़ा बाजार मिला है, जो लाभप्रद है। अब ये संस्थाएं समुदायों के साथ इसलिए खड़ी हैं ताकि उन्हें शासकीय अधिकार मिल सकें। इस पूरे परिदृश्य में सरकार एक प्रमुख हितधारक है, परन्तु वह अभी भी इनकी बात सुनने को तैयार नहीं है।

अनुक्रमणिका

विशेष हिन्दी संस्करण, सितम्बर 2017

5 **ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं उसके पारिस्थितिकी तंत्र को पुनजीर्वित करने हेतु हाथ मिलाना**
रमेश भाटी एवं शौर्यामॉय दास

9 **जंगली खाद्य पदार्थों का मोल**
देबजीत सारंगी

12 **कृषि पारिस्थितिकी पर ज्ञान निर्माण**
के0वी0एस0 प्रसाद

15 **पपीते की वैज्ञानिक विधि से उन्नत खेती**
महेन्द्र चौधरी, राजमणि, अंशुमान श्रीवास्तव एवं आर.एन. मौर्या

17 **किसान विद्यालय : कृषिगत ज्ञान हेतु व्यवहारिक प्रयोगशाला**
अभिजीत मोहन्ती एवं रंजीत साहू

जंगली खाद्य पदार्थो का मोल

देवजीत सारंगी

जलवायु संकट के इस दौर में वनों को वस्तु के तौर पर देखने के कारण उनका ''कार्बन स्टॉक'' कम होता जा रहा है। वनों में भी खाद्य पदार्थों का भण्डार है और बहुत से ग्रामीण गरीब समुदाय अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों पर ही निर्भर करते हैं। विशेषकर जलवायु संकट के सन्दर्भ में, गैर खेती/जंगली खाद्य पदार्थ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में खाद्य संकट के एक समाधान के तौर पर हो सकते हैं।

कृषि पारिस्थितिकी पर ज्ञान निर्माण

के0वी0एस0 प्रसाद

कृषि–पारिस्थितिकी पर प्रभाव डालने वाले अभ्यासों, अभ्यास आधारित नीतियों, साक्ष्य आधारित चर्चाओं एवं नव विकसित सहभागिता के ऊपर व्यवहारिक ज्ञान का आदान–प्रदान बढ़ाने में व्यवस्थित दस्तावेजीकरण एक मुख्य भूमिका निभाता है। जी0ई0ए0जी0 का उदाहरण कुछ ऐसा ही प्रदर्शित करता है।

पपीते की वैज्ञानिक विधि से उन्नत खेती

महेन्द्र चौधरी, राजमणि, अंशुमान श्रीवास्तव एवं आर.एन. मौर्या

पपीता से बहुत से मूल्यवर्धक पदार्थ जैसे जैम, कैण्डी, नेक्टर व पेय पदार्थ तथा कच्चा पपीता से प्राप्त पपेन नामक पदार्थ से सौन्दर्य प्रसाधन का सामान बनाने के अतिरिक्त औषधि का भी काम लिया जाता है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक विधि से पपीते की खेती कर लघु, सीमान्त व महिला किसान आर्थिक दृष्टि से सशक्त बन सकते हैं।

किसान विद्यालय : कृषिगत ज्ञान हेतु व्यवहारिक प्रयोगशाला

अभिजीत मोहन्ती एवं रंजीत साहू

किसान विद्यालय किसानों एवं सन्दर्भ व्यक्तियों के बीच में आपस में ही सीखने का एक मंच प्रदान करता है। आपसी मेल–जोल, चर्चा एवं व्यवहारिक प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों के पारम्परिक ज्ञान को पुनर्जीवित करने तथा स्थाई बनाये रखने का यह एक अवसर है, जिसे आधुनिक विज्ञान के माध्यम से और उन्नत किया जा रहा है।

यह अंक...

सम्पादकीय,,,

मौसमी अस्थिरता और वैश्विक से लेकर स्थानीय स्तर तक की मंदी का प्रत्यक्ष असर लघु, सीमान्त व महिला किसानों पर पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उन्हें खेती की पारम्परिक विधा की तरफ प्रेरित करते हुए कृषि एवं कृषि उत्पादों से जुड़े अन्य पक्षों से जोड़ने की तरफ भी ध्यान दिया जाये। आज इस बात की विशेष आवश्यकता है कि खासकर वन आधारित आजीविका पर निर्भर करने वाले छोटे, मझोले व महिला किसानों के लिए आजीविका के विकल्पों पर पुनर्विचार करते हुए उन्हें नवाचारों के लिए उत्प्रेरित किया जाये।

लीज़ा इण्डिया (हिन्दी) के सितम्बर, 17 अंक को कुछ ऐसे ही विचारों के साथ विविधता पूर्ण ढंग से सम्पादित किया गया है। श्री रमेश भाटी व श्री शौर्यामॉय दास द्वारा लिखित लेख ''ग्रामीण अर्थ व्यवस्था एवं उसके पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करने हेतु हाथ मिलाना'' में कच्छ क्षेत्र के चरवाहा समुदाय द्वारा अपनी आजीविका को सुदृढ़ करने एवं स्थाईत्व प्रदान करने हेतु किये जा रहे प्रयासों का सविस्तार वर्णन किया गया है। लेख में यह भी बताया गया है कि आज भी चरवाहा समुदाय सदियों से अपनी धरोहर प्राकृतिक संसाधन बन्नी चारागाह का संरक्षण व प्रबन्धन करने हेतु पारम्परिक विधियों का सहारा ले रहे हैं। श्री देबजीत सारंगी द्वारा लिखित ''जंगली खाद्य पदार्थों का मोल'' नामक लेख पत्रिका का दूसरा लेख है, जो वनों में गैर कृशित तरीके से उपजे खाद्य पदार्थों व उनके पोषक तत्वों के बारे में बात करता है। लेख यह भी बताता है कि ये गैर कृषित जंगली उत्पाद किस प्रकार से आदिवासी जनजातिय समूहों की खाद्य प्रणाली का एक अंग हैं और ये उत्पाद न सिर्फ उनकी खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं, वरन् इन समुदायों को पोशण भी प्रदान करते हैं।

पत्रिका का तीसरे लेख ''कृषि पारिस्थितिकी पर ज्ञान निर्माण : व्यवस्थित दस्तावेजीकरण का प्रभाव'' में इस बात पर बल दिया गया है कि जमीन स्तर से जुड़े अनुभवों का प्रसार कितना आवश्यक है? श्री के0वी0एस0 प्रसाद द्वारा लिखित यह लेख इस बात को प्रदर्शित करता है कि जमीन स्तर से जुड़े अनुभवों का नियोजित ढंग से किया गया दस्तावेजीकरण तथा उसका उचित माध्यमों से किया गया प्रसार न सिर्फ ज्ञान को बढ़ाता है, वरन् उस ज्ञान का ग्रहण भी तेजी से होता है और किसानों द्वारा किये जाने वाले नवाचारों को व्यापक फलक प्रदान करने के लिए जमीन स्तर से जुड़ी स्वैच्छिक संगठनों के पास नियोजित व सुव्यवस्थित दस्तावेजीकरण की क्षमता होना अति आवश्यक है। किसान कॉल सेण्टर, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली से जुड़े शोधार्थियों श्री महेन्द्र चौधरी, श्री राजमणि, श्री अंशुमान श्रीवास्तव व श्री आर0एन0 मौर्य द्वारा प्रस्तुत ''पपीते की वैज्ञानिक ढंग से उन्नत खेती'' छोटे व मझोले किसानों के लिए आयजनक गतिविधियों की दिशा प्रदान करता है। इस लेख में पपीते की खेती के सभी चरणों को सुव्यवस्थित तरीके से सिल–सिलेवार ढंग से बताया गया है, जिसे अपनाकर किसान बेहतर आय प्राप्त कर सकता है।

अन्तिम लेख के तौर पर श्री अभिजीत मोहन्ती व श्री रंजीत साहू द्वारा लिखित लेख ''किसान विद्यालय : कृषिगत ज्ञान हेतु व्यवहारिक प्रयोगशाला'' को पत्रिका में शामिल किया गया है। इस लेख के माध्यम से लेखकद्वय ने यह बताने का प्रयास किया है कि किसान विद्यालय गांव व प्रक्षेत्र स्तर पर ज्ञान व अनुभवों के आदान–प्रदान का एक ऐसा माध्यम है, जहां किसानों को उनकी खेती से सम्बन्धित समस्याओं का व्यवहारिक समाधान प्रक्षेत्र स्तर पर प्राप्त होता है। इस लेख में लेखक ने इस बात पर बल दिया है कि इस विधा से सीखने की प्रक्रिया अधिक मजबूत होती है।

अन्त में पत्रिका में दिये गये लेखों की उपयोगिता एवं उपयुक्तता के उपर आपके सुझावों की प्रतीक्षा में....

• **सम्पादक मण्डल**

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं उसके पारिस्थितिकी तंत्र को पुनर्जीवित करने हेतु हाथ मिलाना

रमेश भाटी एवं शौर्यामॉय दास

भैंसों की स्थानीय प्रजातियों तथा पारिस्थितिकी तंत्र को संरक्षित करने हेतु चरवाहा समुदायों की मदद करने के लिए बहुत सी संस्थाएं आगे आयी हैं। इस सहभागिता से समुदायों को दूध के व्यवसाय के लिए बड़ा बाजार मिला है, जो लाभप्रद है। अब ये संस्थाएं समुदायों के साथ इसलिए खड़ी हैं ताकि उन्हें शासकीय अधिकार मिल सकें। इस पूरे परिदृश्य में सरकार एक प्रमुख हितधारक है, परन्तु वह अभी भी इनकी बात सुनने को तैयार नहीं है।

फोटो : लेखक

मालधारियों द्वारा परम्परागत रूप से प्रबन्धित बन्नी

बन्नी पिछले पाँच दशकों से भी अधिक समय से मालधारियों का गढ़ बना हुआ है। कच्छ क्षेत्र में चरवाहा समुदायों को मालधारी के रूप में जाना जाता है। कभी एशिया के दूसरे सबसे बड़े चारागाह के तौर पर प्रसिद्ध ''बन्नी'' को भारत के सभी चारागाहों में सबसे बेहतर माना जाता था। लगभग 2500 वर्ग किमी में विस्तारित इस चारागाह में जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों की बहुत सी प्रजातियां पाई जाती हैं। आज की तारीख में भी बन्नी में 7000 से अधिक परिवार निवास करते हैं और उनमें से अधिकांश मालधारी हैं। राजशाही शासन के दौरान मालधारी बन्नी पर अपने चराई के अधिकार का उपयोग करते थे और इस हेतु वे ''चराई कर'' का भुगतान करते थे। चारागाह के प्रबन्धन एवं उपयोग का निर्णय मालधारी समुदाय के नेता द्वारा लिया जाता था और समुदाय यह सुनिश्चित करता था कि सभी लोग तय मानकों का अनुपालन करें। मालधारियों के पास अभी भी 1856 का एक दस्तावेज है, जिसमें राजशाही शासन के दौरान बन्नी पर उनके अधिकारों को संहिताबद्ध किया गया है।

बन्नी को वर्ष 1955 में संरक्षित वन के अन्दर वर्गीकृत किया गया। उस समय वहां पर रहने वाले लोगों का किसी भी तरह का कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया और न ही कोई समझौता प्रक्रिया अपनायी गयी। तब से चारागाह पर शासकीय अधिकार अस्पष्ट हैं। हालांकि राजस्व विभाग ने वर्ष 1998 में ही इसका प्रशासनिक नियन्त्रण वन विभाग को हस्तान्तरित कर दिया था, परन्तु वन विभाग ने बन्नी के अन्दर बसे गांवों का सर्वेक्षण कार्य पूरा होने तक प्रशासनिक अधिकार लेने से मना कर दिया। इस प्रकार न तो वन विभाग और न ही राजस्व विभाग ने बन्नी को अपने प्रशासनिक नियन्त्रण में लेने हेतु कोई कदम उठाया। कोई औपचारिक नियंत्रण न होने के बावजूद भी मालधारियों ने अपने पारम्परिक प्रणाली का उपयोग करते हुए बन्नी चारागाह का प्रबन्धन एवं प्रशासन जारी रखा। बन्नी मालधारी अपने समृद्ध नस्लों के जानवरों, विशेषकर बन्नी भैंस के कारण विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। बन्नी भैंसों का पारिस्थितिकी प्रणाली के साथ गहरा सम्बन्ध है और मालधारियत की एक सुरूचिपूर्ण संस्कृति है।

परिवर्तन हेतु गतिविधि

हालांकि चीजें जल्द ही बदलने वाली थीं और वर्ष 2008 में, बन्नी के जानवरों की प्रजातियों, संस्कृति एवं मानव पारिस्थितिकी को दर्शाते एक वार्षिक पशु मेला– बन्नी पशु मेला ने इस परिवर्तन की जमीन तैयार की। मालधारी समुदाय के वयस्कों ने यह महसूस किया कि उन्हें अपने समुदाय की आजीविका को बढ़ाने के लिए एक केन्द्रित प्रयास करने की

आवश्यकता है, बन्नी भैंस प्रजाति को मान्यता दिलाने के लिए काम करना है, चारागाह पर समुदाय के अधिकारों के मुद्दों पर काम करना है और प्रोसोपिस जूलीफ्लोरा नामक अंग्रेजी घास के विस्तार के कारण तेजी से घट रहे बन्नी चारागाह को संरक्षित करने हेतु योजना विकसित करनी है। इस हेतु लगभग 12 मालधारी एक साथ आये और वर्ष 2009 में उन्होंने गुजरात ट्रस्ट एवं सोसायटी एक्ट के अन्तर्गत बन्नी पशु उपचारक मालधारी संगठन नाम से बन्नी ब्रीडर्स एसोसियेशन का गठन कर समुदाय के उद्देश्यों हेतु काम करना प्रारम्भ किया। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संगठन का एक औपचारिक प्रशासनिक ढांचा तैयार किया गया और संगठन को चलाने के लिए 21 सदस्यों की कार्यकारिणी तय की गयी। कार्यकारिणी समिति का चुनाव तीन वर्षों के लिए किया गया। कार्यकारिणी समिति में कुल 19 पंचायतों के प्रत्येक पंचायत से एक प्रतिनिधि और 2 अनुसूचित जाति के सदस्य थे। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संगठन ने दुग्ध अर्थ–व्यवस्था को बढ़ाने के लिए बन्नी भैंस को नेशनल डेयरी डेवलपमेण्ट बोर्ड के अन्तर्गत पंजीकृत करने हेतु एक स्थानीय स्वैच्छिक संगठन सहजीवन के साथ जुड़ाव स्थापित किया। उन्होंने पारम्परिक प्रशासनिक मॉडलों के माध्यम से बन्नी संरक्षण के मुद्दे पर भी काम करना तथा जमीन पर अधिकार पाने हेतु सरकार के साथ वार्ता करना प्रारम्भ कर दिया।

बन्नी भैंस को मिली मान्यता

इसके बाद से बन्नी पशु उपचारक मालधारी संगठन को आजीविका के मुद्दे पर काम करने में असफलता ही मिली। बन्नी में चरवाहों की कई पीढ़ियों तक मेहनत करने बाद बन्नी भैंस की प्रजाति तैयार करने में सफलता मिली। इस प्रजाति की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं। जैसे यह भैंस सूखा सहनीय है, इसमें बीमारियों का प्रकोप कम होता है और प्रतिकूल परिस्थितियों में भी इसकी दुग्ध उत्पादन क्षमता उच्च है। यह बहुत शान्त प्रकृति की होती है और रात में भी स्वयं से घास चरने चली जाती है। उपरोक्त सारी विशेषताओं के कारण यह शुष्क एवं अर्ध शुष्क जलवायु के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। सहजीवन, सरदार कृषिनगर कृषिगत विश्वविद्यालय तथा पशुपालन के राज्य विभाग के सहयोग से बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने वर्ष 2010 में इस प्रजाति का पंजीकरण करवाया। यह पंजीकरण प्रजाति एवं प्रजनक दोनों के लिए था। राष्ट्रीय जैव विविधता अभिकरण तथा लाइफ नेटवर्क ने एक मालधारी श्री हादी मूसा तथा बन्नी पशु उपचारक संघ दोनों को संयुक्त रूप से नस्ल उद्धारक पुरस्कार से सम्मानित किया। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ के अध्यक्ष सलेममद हालपोत्रा को नेशनल ब्यूरो ऑफ एनीमल जेनेटिक रिसोर्सेज (एनबीएजीआर) की प्रबन्धन समिति का सदस्य नियुक्त किया गया और वो अभी भी इस पद पर कार्यरत हैं। बन्नी भैंस की प्रजाति का पंजीकरण हो जाने के बाद से इसकी मांग बढ़ गयी है और दाम में भी दोगुना से अधिक की वृद्धि हुई है। आजाद भारत में सबसे पहले पंजीकृत होने वाली प्रजाति बन्नी भैंस और तब से आज तक पशुधन की 29 नयी प्रजातियों का पंजीकरण नेशनल ब्यूरो ऑफ एनीमल जेनेटटिक रिसोर्स द्वारा कराया जा चुका है।

दुग्ध अर्थ–व्यवस्था को मिला जीवनदान

बन्नी के चरवाहे स्थानीय मांग को पूरा करने के लिए दूध का उत्पादन कर रहे थे और इसीलिए वर्ष 2008 तक उन्हें दूध का अच्छा दाम नहीं मिल रहा था। दूध का अच्छा दाम पाने के लिए कच्छ के बाहर स्थापित दूध की डेयरियों तथा दूध के बाजार से जुड़ाव स्थापित करने की आवश्यकता थी और इसलिए बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने नेशनल डेयरी डेवलपमेण्ट बोर्ड (एनडीडीबी) के साथ चर्चा प्रारम्भ कर दी। एनडीडीबी ने बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ के साथ संयुक्त रूप से बन्नी गांव में थोक दूध अवशीतल केन्द्रों की स्थापना करने पर अपनी सहमति दे दी। परिणामस्वरूप, पिछले दशक से दूध का दाम तीन गुना हो गया है। इसके साथ ही दूध का उत्पादन भी बढ़ा है। अब बन्नी में प्रतिदिन 1,00,000 लीटर से भी अधिक दूध का उत्पादन होता है, जबकि वर्ष 2008 में मात्र 60,000 लीटर दूध प्रतिदिन की दर से उत्पादित होता था। आज पशुधन पर आधारित अर्थव्यवस्था का विस्तार हुआ है जो अनुमानतः प्रतिवर्ष 110 करोड़ रूपये है।

> बन्नी के गांवों में थोक मात्रा में दुग्ध अवशीतल केन्द्रों की स्थापना हो जाने के बाद से दूध का उत्पादन बढ़कर 100000 लीटर प्रतिदिन हो गया है और पशुधन से जुड़ी अर्थ व्यवस्था लगभग 110 करोड़ प्रतिवर्ष हो गयी है।

फोटो : लेखक

पीढ़ियों से बन्नी में चरवाहों द्वारा तैयार एवं विकसित की गइयी बन्नी भैंस

परम्परागत प्रशासन व्यवस्था को पुनर्जीवित करना

भारत में वन सम्पदा का अस्तित्व बचाने के लिए लम्बे समय से संघर्ष चल रहा है और हाल के दशकों में यह संघर्ष और तेज हुआ है। वन्य भूमि, जो स्थानीय एवं देशी लोगों की आजीविका का एक बड़ा आधार थी, उसे राज्य सरकार ने संरक्षण के नाम पर कब्जा कर लिया। इससे वहां पर रहने वाले जन सामान्य की वनों के साथ निकटता कम हुई तथा इन संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकारों में कमी आयी अथवा वन्य भूमि पर उनके अधिकारों को पूरी तरह से नकार दिया गया। नागर समाज संगठनों के सहयोग से पुराने लोग तथा स्थानीय समुदाय इन सामुदायिक एवं सामूहिक संसाधनों पर पुनः अपना अधिकार एवं स्वामित्व पाने की चेष्टा में हैं। ये प्रयास वन अधिकार अधिनियम 2006 के आलोक में अनुसूचित जनजाति तथा वन में रहने वाले अन्य जनजातियों के नेतृत्व में किये जा रहे हैं। वन अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत स्थानीय समुदायों को उनके पैतृक भूमि, सामुदायिक वन संसाधनों और वन से जुड़े रीति–रिवाजों पर अधिकार को मान्यता दी गयी है। दुर्भाग्य से, इस वन अधिकार अधिनियम के विरोध में कुछ स्वार्थी लोगों ने अपने स्वार्थ के कारण सड़क जाम कर दिया। परिणामतः आजीविका सुरक्षित करने, वन संरक्षण को बढ़ाने, स्थानीय स्व प्रशासन को मजबूत करने और इसके माध्यम से राजनीतिक विस्तार के उद्देश्यों को प्राप्त करने में वन अधिकार अधिनियम को बहुत कम सफलता मिली।

गुजरात और कच्छ दोनों की स्थितियों में बहुत भिन्नता नहीं हैं। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ द्वारा अपने अधिकारों को औपचारिकता प्रदान करने के लिए सरकार से किये जा रहे विचार–विमर्श की राह कठिन है और अभी भी बात–चीत किसी नतीजे पर नहीं पहुंची है। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने सबसे पहले नागोया प्रोटोकाल के आर्टिकल 8जे के अन्दर विकसित बीसीपी फार्मेट के आधार पर समुदाय के अधिकारों को दस्तावेजित करना प्रारम्भ कर दिया। वर्ष 2009 में वन विभाग ने बन्नी के विस्तृत परिक्षेत्र को घेरने की कार्ययोजना तैयार की। बिना किसी सामुदायिक चर्चा व सहभागिता के तैयार की गयी इस कार्ययोजना में न केवल चरवाहों की बन्नी के अन्दर नमभूमि तक पहुंच में कटौती की गयी थी, वरन् एक एकल कैलेण्डर वर्ष में चरवाहों की आवश्यकता तथा पारिस्थितिकी प्रणाली को भी ध्यान में नहीं रखा गया। बन्नी ब्रीडर्स एसोसियेशन ने अपने सामुदायिक अधिकारों के लिए पूछने का निश्चय किया। क्योंकि यह तय था कि यदि कार्ययोजना को क्रियान्वित किया गया तो चरवाहा समुदाय हेतु आवश्यक पारिस्थितिकी प्रणाली के समक्ष बड़ा खतरा उत्पन्न होगा और अन्ततः उनकी स्वयं की आजीविका, प्रजातियां तथा उनकी संस्कृति प्रभावित होगी।

ब्रीडर्स संघ ने यह भी महसूस किया कि वन अधिकार अधिनियम के माध्यम से बन्नी चारागाह पर अपने अधिकारों को औपचारिक रूप प्रदान करने में सहायता मिल सकती थी और ऐसे समय में, जबकि वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं तो पारम्परिक शासकीय प्रणाली को पुनर्जीवित करने का यह एक अवसर था। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने पूरे बन्नी क्षेत्र में स्थित सभी 54 गांवों में एक हस्ताक्षर अभियान चलाया। यह अभियान अब ''बन्नी को बन्नी रहने दो'' अर्थात 'बन्नी को सार्वजनिक के तौर पर जाना जाये' के नाम से जाना जाता है। चरवाहों द्वारा चारागाह को प्रयोग करने, संरक्षित करने तथा प्रबन्धित करने की पुरानी परम्परा को भी पुनः स्थापित करने के लिए कार्य प्रारम्भ हो गया है। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने गांवों एवं पंचायतों में बहुत सी बैठकें कीं एवं अपने अधिकारों के बारे में जागरूकता फैलाने, अपनी असहमति को सामूहिक रूप से जताने तथा बन्नी में वन अधिकार अधिनियम को तत्काल लागू कराने हेतु राज्य सरकार से आग्रह करने का निश्चय किया। मालधारी समुदायों के अग्रजों तथा बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ के प्रतिनिधियों ने पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय तथा आदिवासी मामलों के मंत्री के साथ विचार–विमर्श का दौर जारी रखा। आदिवासी मामलों के मंत्रालय ने

प्रतिनिधियों को यह सूचित किया कि यद्यपि पूरे राज्य में वन अधिकार अधिनियम लागू हो गया है, परन्तु कच्छ में अभी लागू नहीं किया गया है, क्योंकि कच्छ क्षेत्र में आदिवासी जनसंख्या कम होने के कारण वन अधिकार अधिनियम को क्रियान्वित करने हेतु नोडल एजेन्सी को चयन किया जाना अभी भी शेष है। वर्ष 2012 में, वन विभाग ने कार्ययोजना पर काम करने की पहल की। मालधारियों ने भुज में एक रैली का आयोजन किया और कच्छ के जिलाधिकारी को एक ज्ञापन सौंपते हुए उन्हें तथा राज्य निगरानी समिति को सूचित किया कि – जब तक उनके अधिकारों को वन अधिकार अधिनियम के तहत् मान्यता नही दी जायेगी, तब तक शान्तिपूर्ण ढंग से उनका विरोध जारी रहेगा। 5 जून, 2012 को बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने चारागाह को प्रबन्धित किये जाने वाले तरीके को दिखाने तथा संघर्ष में सहयोग देने हेतु मीडिया को आमंत्रित किया।

राज्य के साथ वार्ता

बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ के कहने पर बन्नी के प्रत्येक गांव में वन अधिकार समिति का गठन कर बन्नी पर अपने अधिकारों की मांग करनी प्रारम्भ कर दी गयी। इन प्रयासों का परिणाम यह रहा कि गुजरात सरकार की तरफ से एक शासनादेश जारी कर राज्य के गैर अनुसूचित जाति वाले जिलों के जिलाधिकारियों को वन अधिकार अधिनियम लागू करने हेतु पत्र भेजा गया। तब जिला प्रशासन ने प्रत्येक गांव में वन अधिकार समिति गठित करने हेतु ग्राम सभा को औपचारिक रूप से बुलाया। पारम्परिक चराई पद्धतियों, जैव–भौतिक परिस्थितियों, पशुधन पर निर्भरता तथा मौजूदा जीव–जन्तुओं एवं वनस्पतियों की जैव विविधता को जानने हेतु सहभागी अभ्यास के माध्यम से संसाधन मानचित्रण योजना विकसित की गयी। समुदाय के इन दावों को एसडीएलसी द्वारा संस्तुत किया गया, जबकि डीएलसी सिद्धान्ततः इन दावों से सहमत थी। 54 गांवों में कुल 54 वन अधिकार समितियां गठित की गयीं, जिनमें से 48 समितियों ने बन्नी पर सामूहिक अधिकार के लिए दावा दाखिल करने का निर्णय किया। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ के लिए यह एक उल्लेखनीय उपलब्धि रही। इससे यह भी प्रदर्शित हुआ कि पूरे बन्नी के सभी क्षेत्रों के चरवाहों की आवश्यकता एक है। साथ ही यह भी दिखा कि सम्पूर्ण वन पर सामूहिक दावा दाखिल करने हेतु इतनी बड़ी संख्या में समुदाय के लोग एक साथ पहली बार सामने आये। तब से, बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ ने चारागाह पर अध्ययन करने तथा इसके संरक्षण एवं प्रबन्धन हेतु शोध आधारित दिशा–निर्देश प्रदान करने हेतु प्रतिबद्ध संगठन के तौर पर आरएएमबीएलई (बन्नी भू–क्षेत्र में शोध एवं निगरानी) के लिए प्रतिष्ठित शोध संस्थानों जैसे एटीआरईई, एनसीबीएस एवं अम्बेडकर विश्वविद्यालय के साथ काम करना प्रारम्भ कर दिया।

बन्नी मालधारियों के इन प्रयासों ने न केवल उनके दावों के लिए एक रास्ता तैयार किया, वरन् गुजरात के अन्य क्षेत्रों में रहने वाले गैर अनुसूचित समुदायों के लोगों के अधिकारों को स्थापित करने का कार्य भी वन अधिकार अधिनियम के माध्यम से किया। बन्नी पर समुदाय के अधिकारों को औपचारिक स्वरूप प्रदान करने हेतु प्रयास अभी भी चल रहे हैं और भुज के जिलाधिकारी तथा गुजरात के मुख्यमंत्री के साथ बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ की वार्ता चल रही है। अनेक परीक्षणों और कष्टों से गुजरकर यह यात्रा हो रही है और बन्नी मालधारियों की सामूहिक एकता ही उनकी शक्ति है। भारत में बन्नी मालधारी ही एकमात्र चरवाहा समूह हैं, जो अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ रहे हैं। विशेष रूप से, बन्नी भी सबसे बड़ा चारागाह है, जहां भूमि पर अधिकारों के लिए समुदाय और सरकार के बीच वार्ता चल रही है। शासन के अभाव अथवा गलत शासन के कारण भारत में सामुदायिक सम्पत्तियों का ह्रास लम्बे समय से देखा जा रहा है। बन्नी पशु उपचारक मालधारी संघ के माध्यम से, मालधारियों ने इसे हल करने के लिए एक ऐसी प्रणाली को प्रस्तावित किया है, जो पूरे देश में दुहराई जा सकती है। उनके अधिकारों को मान्यता दिया जाना न केवल चरवाहों के लिए एक उल्लेखनीय उपलब्धि होगी, वरन् यह भारत के प्रजातंत्र के लिए भी महत्वपूर्ण होगा। हम केवल यह आशा ही व्यक्त कर सकते हैं कि बन्नी पर समुदाय के अधिकारों को मान्यता मिलने से भारत के अन्य चरवाहा समुदाय भी इसे अपनायेंगे और अपने सामूहिक जमीनों पर अधिकार पाने हेतु दावा करना प्रारम्भ करेंगे।

■

रमेश भाटी
कार्यक्रम निदेशक, सहजीवन
भुज, कच्छ- 370001
वेबसाइट : www.sahjeevan.org
ईमेल : rkb335@gmail.com

Stakeholders in agroecology
LEISA INDIA, Vol 18, No.4, Dec. 2016

जंगली खाद्य पदार्थों का मोल

देवजीत सारंगी

जलवायु संकट के इस दौर में वनों को वस्तु के तौर पर देखने के कारण उनका ''कार्बन स्टॉक'' कम होता जा रहा है। वनों में भी खाद्य पदार्थों का भण्डार है और बहुत से ग्रामीण गरीब समुदाय अपनी खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वनों पर ही निर्भर करते हैं। विशेषकर जलवायु संकट के सन्दर्भ में, गैर खेती/जंगली खाद्य पदार्थ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में खाद्य संकट के एक समाधन के तौर पर हो सकते हैं।

वन बहुत से गैर खेती वाले खाद्य पदार्थों जैसे खाद्य फूल, फल, पत्ते, बीज, मशरूम, बांस, जड़ें एवं कन्द, पक्षियां, शहद एवं खाद्य कीड़े आदि का समृद्ध स्रोत हैं। रायगढ़ के अधिकांश आदिवासी किसान, जो एक फसली वर्ष में 30 से भी अधिक फसलें लेते हैं, वे भी विविधता के लिए जंगलों पर भरोसा करते हैं। आदि नामक एक किसान का कहना है– ''वन का कोई मोल हो ही नहीं सकता। चाहे हम 40 प्रजातियां भी उगा लें, परन्तु वनों से हमें विविध प्रकार के 200 खाद्य पदार्थों की उपलब्धता होती है। वनों में, गर्मियों में फलों सहित कई प्रकार के खाद्य पदार्थों का अंकुरण होता है, मानसून सीजन में बारिश के समय बांस की खूंटी और मशरूम तथा सर्दियों में विविध प्रकार के कन्द होते हैं। तदिंगपाई गांव की बूढ़ी आदिवासी महिला पारबती पुसिका कहती हैं– वन हमारी मां है। एक बार जब बहुत भयंकर सूखा पड़ा था, उस समय वन से मिलने वाली जड़ों, बांस की कोंपलों, पत्तियों एवं शहद पर ही हमारे गांव के लोगों की पूर्ण निर्भरता थी।''

परिवारों की खाद्य आवश्यकता को पूरा करने में सहयोग प्रदान करने के अतिरिक्त, ये वन्य खाद्य पदार्थ परिवार के लिए आय के स्रोत के रूप में भी उपयोगी होते हैं। आदि का कहना है– ''जब घर में पैसा नहीं रहता है, उस समय हम जंगल में से उगे हल्दी को खोद कर बाजार में बेचते हैं और वहां से नमक या तेल खरीद कर लाते हैं।'' वन से मिलने वाले खाद्य पदार्थ न सिर्फ उन्हें आत्मनिर्भर बनाते हैं, वरन् इससे उनकी पहचान और आत्मसम्मान बढ़ता और सबसे महत्वपूर्ण तो यह है कि ये खाद्य पदार्थ उन्हें साहूकारों के चंगुल में आने से बचाते हैं। अतः

जंगली खाद्य खेत आदिवासी परिवारों के भोजन का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं।

कृषि विज्ञान के पारम्परिक उद्देश्यों से अलग जाकर वनों से प्राप्त होने वाले खाद्य फलों, फूलों और पत्तियों आदि को एकत्रित व संरक्षित करना भी खाद्य उत्पादन की श्रेणी में आता है।

परिवार के भोजन में वन्य खाद्य पदार्थों की भूमिका

लोगों के भोजन में वन्य खाद्य पदार्थों की भूमिका को समझने के लिए वर्ष 2013 में उड़ीसा के रायगढ़ जिले में वनों के पास रहने वाले किसानों के ऊपर एक अध्ययन किया गया। अध्ययन के दौरान यह पता चला कि जुलाई, 2013 के आखिरी सप्ताह से लेकर दिसम्बर, 2013 तक 121 प्रकार के विविध खाद्य पदार्थ वनों से लिये गये। औसतन, 21 से लेकर 69 प्रकार के खाद्य पदार्थ तो ऐसे थे, जिन्हें प्रति परिवार 4.56 किग्रा0 की दर से जंगलों से प्राप्त किया गया। सामान्यतः लोग प्रतिदिन 0.725 किग्रा0 वन्य खाद्य पदार्थों का उपभोग करते हैं, जो उनके भोजन का हिस्सा होता है। 6 गांवों में किये गये इस अध्ययन से पता चला कि कुल पके भोजन का 12 प्रतिशत से 24.4 प्रतिशत तक का हिस्सा वन्य खाद्य पदार्थों का होता है। गांव की विशेषताओं तथा वन की जैव विविधता संयोजन के आधार पर वन्य खाद्य पदार्थों के ऊपर समुदायों की निर्भरता 20 से 50 प्रतिशत तक होती है। निर्भरता का यह प्रतिशत विविधता और मात्रा दोनों सन्दर्भों में होता है।

वनों से लिये गये खाद्य पदार्थों में सबसे बड़ी मात्रा विभिन्न प्रकार के कन्दों की थी। केटा एक ऐसा ही कन्द है, जो एक सूखे खाद्य के रूप में स्थानीय समुदायों के लिए विशेष महत्व रखती है। पिटा कोन्डा एक दूसरी प्रजाति है, जिसे 4–5 महीने तक के लिए भण्डारित किया जा सकता है। सूखा के वर्षों में, जब फसलें नहीं हो पाती हैं, ये कन्द और अन्य दूसरे वन्य खाद्य पदार्थ लोगों की भोजन की आवश्यक आवश्यकता को पूरा करते हैं। इसके साथ ही, गांव वाले 22 प्रकार की खाने योग्य हरी पत्तियों तथा 12–15 प्रकार के फलों को पाते हैं।

सामान्यतः गाँव वाले वनों से खाद्य पदार्थ एकत्र करने हेतु झुण्ड में जाते हैं। वे एक साथ खाद्य पदार्थ इकट्ठा करते हैं और फिर आपस में बंटवारा कर लेते हैं। यहां तक कि गाँव में उन लोगों को भी एकत्रित वन्य खाद्य पदार्थ में से हिस्सा दिया जाता है, जो वन तक जाने में असमर्थ होते हैं। पुराने समय से प्रत्येक गाँव के लिए वन का क्षेत्र बंटा होता है और अपनी सीमा में ही रहकर भोजन तलाशने के ऊपर उनकी आपसी सहमति बनी होती है। गाँव के प्रत्येक व्यक्ति का वन, स्थानीय जलसोतों, वृक्षों तथा वहां की कृषि–पारिस्थितकी के अनुसार उपलब्ध संसाधनों पर समान अधिकार होता है। यदि एक गाँव के लोग दूसरे गाँव के अधिकार क्षेत्र वाले वन में जाकर बांस की खूंटी लेते हैं तो दूसरा उनके क्षेत्र से शहद एकत्र करता है। लोगों और पर्यावरण को बचाये रखने के लिए अन्तर्निर्भरता की यह संस्कृति महत्वपूर्ण है।

सिकुड़ते वन संसाधन

क्षेत्र के अनुभव तथा समुदाय के साथ की गयी चर्चा दोनों यह प्रदर्शित करते हैं कि वनों को उजाड़ दिया गया है और उनकी जगह सागौन, नीलगिरी, (यूकेलिप्टस) तथा पोंगमिया के वन तैयार किये जा रहे हैं। परिणामतः वन का संयोजन तेजी से बदल रहा है। वन विविधता कम होने का नकारात्मक परिणाम हो रहा है और इसे विशेषकर महिलाओं ने महसूस किया है, जो वन्य खाद्य पदार्थों सहित गैर इमारती वनोत्पादों को मिलकर एकत्र करती थीं। 80 साल की फूलो सिकोका कहती हैं– ''वन बदल गये हैं और लोग भी बदल गये हैं। इस प्रक्रिया में, हमारे बहुत से वन्य खाद्य कन्द विलुप्त हो गये। हम अपने स्वयं के खाद्य वृक्षों को लगाना पसन्द करेंगे। आम तौर पर बहुसंख्य आबादी में प्रचलित खाद्य एवं खेती के मॉडल में आदिवासियों तथा अन्य वन आधारित समुदायों द्वारा उपभोग किये जाने वाले वन आधारित पारम्परिक एवं विविध खाद्य पदार्थों के बहु उपयोगी मूल्यों को मान्यता नहीं दी जाती है। पात्र लोगों को गोदामों में रखे अथवा राज्य सरकार द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार चावल/गेंहू की एक निश्चित मात्रा में अनुदानित मूल्य पर उपलब्ध कराना ही खाद्य सुरक्षा का अधिकारिक अर्थ होता है। स्थानीय तौर पर पसन्द की जाने वाली आदिवासी खाद्य एवं खेती प्रणाली में शामिल पोषणयुक्त फसलों जैसे मोटे अनाज, अन्य अनाज, दलहन, तिलहन तथा हरी पत्तियां पूरी तरह उपेक्षित हैं। इनके समर्थन में कानून एवं नीतियां भी नहीं बनी हैं। वनों में परम्परागत रूप से निवास करने वाले समुदायों में से बहुतों का अपनी उस जमीन पर कोई कानूनी अधिकार नहीं है। यद्यपि कि वे उस जमीन पर पीढ़ियों से निवास करते हैं और वह उनके जीवन व आजीविका के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यहां तक कि वन अधिकार अधिनियम बनने के 10 वर्षों बाद भी, उड़ीसा के वनों के मात्र 6 प्रतिशत गांवों को ही अपने वन पर कानूनी मान्यता मिल पाई है।

आगामी परिदृश्य

जलवायु परिवर्तन के सन्दर्भ में, अकृषित जंगली खाद्य पदार्थ एक बहुत महत्वपूर्ण समुदाय आधारित अनुकूलन रणनीति है। वैश्वीकरण तथा हर पल बदलती दुनिया के इस दौर में बहुत सी मानवजनित चुनौतियां भी वनों के सामने हैं। जलवायु संकट के इस दौर में वनों को अब सिर्फ ''कार्बन भण्डार'' के तौर पर देखा जा रहा है, जबकि वे खाद्य का भण्डार भी हैं। उनकी पारिस्थितिक क्रियाओं जैसे– आक्सीजन प्रदान करना, बारिश कराना, भूगर्भ जलस्तर को रिचार्ज करना, मृदा की ऊपरी उर्वर सतह का संरक्षण करना, बाढ़ और सूखा का समाधान बनना आदि के साथ ही स्थानीय समुदायों के लिए खाद्य सुरक्षा भी वन के महत्वपूर्ण कार्य हैं।

भारत की वन नीति को खाद्य सुरक्षा के सन्दर्भ में फिर से परिभाषित करने की आवश्यकता है। न सिर्फ

> खाद्य सुरक्षा तथा पोषण के कारण कई राजनीतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों के एजेण्डे में प्रमुखता के तौर पर शामिल होने के कारण, खाद्य सुरक्षा तथा पोषण संवेदी भविष्य के सन्दर्भ में जंगलों और वृक्षों के योगदान को समझना अधिक महत्वपूर्ण है।

लकड़ियों के सन्दर्भ में वरन् वनों की बहु क्रियाओं तथा उपयोगिता को देखते हुए भी स्थायी वन प्रबन्धन की आवश्यकता है। लोगों की पहुंच सार्वजनिक संसाधनों तक होती है और सार्वजनिक संसाधनों की विविधता को बनाये रखने के लिए अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी। महिलाओं की पहुंच वनों तक बढ़ाने के समुचित उपायों को उन्नत करना होगा, ताकि खाद्य सुरक्षा के लिए संसाधनों का अधिक स्थाई प्रबन्धन सुनिश्चित किया जा सके व वनों की विविधता को प्रबन्धित किया जा सके। लोगों और उनके संस्कृति दोनों को बचाने की दृष्टि से वनों की आवश्यकता है।

जलवायु संकट के आलोक में, एक दीर्घकालिक अनुकूलन रणनीति के तौर पर अकृषित खाद्य पदार्थों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। कृषि– वानिकी और स्थाई कृषि के लिए स्थानीय तौर पर पहल किये जाने होंगे। क्योंकि ये मृदा और जल दोनों के लिए लाभप्रद होते हैं। साथ ही इससे वनों की विविधता भी बरकरार रहेगी। खाद्य सुरक्षा तथा पोषण की दृष्टि से कई राजनीतिक और वैज्ञानिक क्षेत्रों के एजेण्डे में प्रमुखता के रूप से शामिल होने के कारण, खाद्य सुरक्षा तथा पोषण संवेदी भविष्य के सन्दर्भ में वनों और वृक्षों के योगदान को समझना अधिक महत्वपूर्ण है। यदि खाद्य संप्रभुता को स्थानीय वन आश्रित समुदायों के एक संगठित सिद्धान्त के रूप में विकसित नहीं किया गया तो इससे पूरे राज्य की खाद्य संप्रभुता पर प्रभाव पड़ सकता है। ''अकृषित'' अथवा वन्य खाद्य पदार्थ न सिर्फ भूख मिटाने के लिए हैं वरन् जंगलों और लोगों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है और इसे समुचित ढंग से समझने की जरूरत है।

सन्दर्भ

देबल देब, कबिता कुरगन्ती, वी रूकमिनी राव एवं सालोमे येशूदास, खाद्य उत्पादन स्थानों के तौर पर जंगल– उड़ीसा में आदिवासियों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा एवं अकृषित खाद्य पदार्थों का एक खोजपूर्ण अध्ययन, जुलाई 2014, लिविंग फार्म्स द्वारा प्रकाशित

एस. भूटानी, जंगल, हमारे भोजन! पॉलिसी ब्रीफ, 2014, लिविंग फार्म्स, उड़ीसा

■

देबजीत सारंगी
लिविंग फार्म्स
प्लॉट नं० 1181/2146, रत्नाकर बाग-2, टंकापानी रोड,
भुवनेश्वर- 751018
ईमेल : livingfarms@gmail.com
वेबसाईट : www.vasundharaorissa.org

Valuing underutilized crops
LEISA INDIA, Vol 9, No. 2, June 2016

Issues and Themes of LEISA INDIA Published in English 2000 - 2016

V.2, No. 1, 2000 - Desertification
V.2, No. 2, 2000 - Farmer innovations
V.2, No. 3, 2000 - Farming in the forest
V.2, No. 4, 2000 - Monocultures towards sustainability

V.3, No. 1, 2001 - Coping with disaster
V.3, No. 2, 2001 - Go global stay local
V.3, No. 3, 2001 - Lessons in scaling up
V.3, No. 4, 2001 - Biotechnology

V.4, No. 1, 2002 Managing Livestock
V.4, No. 2, 2002 - Rural Communication
V.4, No. 3, 2002 - Recreating living soil
V.4, No. 4, 2002 - Women in agriculture

V.5, No. 1, 2003 - Farmers Field School
V.5, No. 2, 2003 - Ways of water harvesting
V.5, No. 3, 2003 - Access to resources
V.5, No. 4, 2003 - Reversing Degradation

V.6, No. 1, 2004 - Valuing crop diversity
V.6, No. 2, 2004 - New generation of farmers
V.6, No. 3, 2004 - Post harvest Management
V.6, No. 4, 2004 - Farming with nature

V.7, No. 1, 2005 - On Farm Energy
V.7, No. 2, 2005 - More than Money
V.7, No. 3, 2005 - Contribution of Small Animals
V.7, No. 4, 2005 - Towards Policy Change

V.8, No. 1, 2006 - Documentation for Change
V.8, No. 2, 2006 - Changing Farming Practices
V.8, No. 3, 2006 - Knowledge Building Processes
V.8, No. 4, 2006 - Nurturing Ecological Processes

V.9, No. 1, 2007 - Farmers Coming together
V.9, No. 2, 2007 - Securing Seed Supply
V.9, No. 3, 2007 - Healthy Produce, People and Environment
V.9, No. 4, 2007 - Ecological Pest Management

V.10, No. 1, 2008 -Towards Fairer Trade
V.10. No. 2, 2008 - Living soils
V.10, No. 3, 2008 - Farming and Social Inclusion
V.10, No. 4, 2008 - Dealing with Climate Change

V.11, No. 1, 2009 - Farming Diversity
V.11, No. 2, 2009 - Farmers as Entrepreneurs
V.11, No. 3, 2009 - Women and Food Sovereignty
V.11, No. 4, 2009 - Scaling up and sustaining the gains

V.12, No.1, 2010 - Livestock for sustainable livelihoods
V.12, No.2, 2010 - Finance for farming
V.12, No.3, 2010 - Managing water for sustainable farming

V.13, No.1, 2011 - Youth in farming
V.13, No.2, 2011 - Trees and farming
V.13, No.3, 2011 - Regional Food System
V.13, No.4, 2011 - Securing Land Rights

V.14, No.1, 2012 - Insects as Allies
V.14, No.2, 2012 - Greening the Economy
V.14, No.3, 2012- Farmer Organisations
V. 14, No.4, 2012- Combating Desertification

V. 15, No.1, 2013- SRI: A scaling up success
V. 15, No.2, 2013- Farmers and market
V. 15, No.3, 2013- Education for change
V. 15, No.4, 2013- Strengthening family farming

V. 16, No. 1, 2014- Cultivating farm biodiversity
V. 16, No. 2, 2014- Family farmers breaking out of poverty
V. 16, No. 3, 2014- Family farmers and sustainable landscapes
V. 16, No. 4, 2014- Family farming and nutrition

V. 17, No. 1, 2015- Soils for life
V. 17, No. 2, 2015- Rural-urban linkages
V. 17, No. 3, 2015- Water-lifeline for livelihoods
V. 17, No. 4, 2015- Women forging change

V.18, No.1, 2016- Co-creation of knowledge
V.18, No.2, 2016-Valuing underutilised crops
V.18, No.3, 2016-Agroecology-Measurable and sustainable
V.18, No.4, 2016-Stakeholders in agroecology

कृषि पारिस्थितिकी पर ज्ञान निर्माण
व्यवस्थित दस्तावेजीकरण का प्रभाव

के०वी०एस० प्रसाद

कृषि–पारिस्थितिकी पर प्रभाव डालने वाले अभ्यासों, अभ्यास आधारित नीतियों, साक्ष्य आधारित चर्चाओं एवं नव विकसित सहभागिता के ऊपर व्यवहारिक ज्ञान का आदान–प्रदान बढ़ाने में व्यवस्थित दस्तावेजीकरण एक मुख्य भूमिका निभाता है। जी0ई0ए0जी0 का उदाहरण कुछ ऐसा ही प्रदर्शित

जी0ई0ए0जी0 के प्रकाशन

पारिस्थितिकी कृषि ज्ञान के पारम्परिक देशज स्रोतों, किसानों द्वारा किये गये शोधों तथा क्षेत्र विशेष के आधार पर समाधान एवं विकल्प तैयार करने के ऊपर किये जाने वाले नवाचारों से प्रेरित है। अनुकूलन और स्थानीय नवाचारों के माध्यम से कृषि–पारिस्थितिकी पर ज्ञान को सुधारा जाता है। स्थाई खाद्य प्रणालियों एवं आजीविका को बढ़ावा देने हेतु इस तरह की जानकारियों को साझा करना महत्वपूर्ण होता है।

फिर भी, सन्दर्भ विशिष्ट अभ्यासों, दृष्टिकोणों एवं सीखों का व्यवस्थित दस्तावेजीकरण तथा उनका प्रसार करने की प्रक्रिया बहुत मजबूत नहीं है। खेत पर काम करने वाले किसान और कृषि–पारिस्थितिकी से जुड़े अभ्यासों को बढ़ावा देने वाले स्वैच्छिक संगठन दोनों ही के पास दस्तावेजीकरण करने की क्षमता अक्सर बहुत कम होती है। इसलिए संस्थाओं की दस्तावेजीकरण क्षमता बढ़ाने की मुख्य आवश्यकता है ताकि वे जानकारियों और अनुभवों को सार्वजनिक डोमेन में साझा कर सकें।

इस पृष्ठभूमि में, ए.एम.ई. फाउण्डेशन ने लीज़ा इण्डिया कार्यक्रम के अन्तर्गत सहयोगी संस्थाओं के साथ मिलकर एक वैकल्पिक कृषि–पारिस्थितिकी मूवमेण्ट पर ज्ञान सहनिर्माण को मजबूत व साझा करने हेतु दस्तावेजीकरण एवं संवाद कार्यक्रमों के माध्यम से पहल की। लीज़ा इण्डिया कन्सोर्टियम समान विचारधारा वाले स्वैच्छिक संगठनों एवं व्यक्तियों का समूह है, जो कृषि पारिस्थितिकी अभ्यासों पर संयुक्त दृष्टि एवं आम धारणा प्रणाली के तहत् काम करता है।

स्वयं को सशक्त करने की मजबूत इच्छाशक्ति से संचालित, लीज़ा इण्डिया कन्सोर्टियम के सहभागी एक दो वर्षीय दस्तावेजीकरण एवं संवाद कार्यक्रम में शामिल हुए। वर्ष 2003–2005 के दौरान संचालित इस कार्यक्रम को इलिया, नीदरलैण्ड के परामर्श से लीज़ा इण्डिया टीम ने संचालित किया। यह कार्यक्रम संगठनों के अन्दर दस्तावेजीकरण एवं संवाद क्रियाओं को तेज करने और प्राथमिकता में शामिल करने के लिए प्रक्रियाओं एवं अभ्यासों को सक्रिय करने के उपर केन्द्रित था। ज्ञान आदान–प्रदान करने, ज्ञान सह निर्माण तथा ज्ञान उपयोग को बढ़ाने के विषय पर क्षमता निर्माण के बीच ताल–मेल को दर्शाने हेतु एक सहयोगी के अनुभवों को यहां दर्शाया जा रहा है।

कार्यक्रम

वर्ष 2003–2005 के दौरान दस्तावेजीकरण एवं संवाद पर दो वर्षीय कार्यक्रम को क्रियान्वित किया गया। इसके अन्तर्गत स्रोत, दस्तावेजीकरण एवं संवाद पर कार्यशालाएं, नियोजन एवं समीक्षा बैठकें, प्रक्षेत्र एवं अन्य कार्य शामिल रहे। सहभागिता कर रहे संगठनों को दस्तावेजीकरण प्रक्रिया को प्राथमिकता देने, इस कार्य हेतु अपनी संस्था से किसी व्यक्ति की पहचान करने और अन्त में अपनी संस्था के अन्दर पूरे कार्यक्रम को संस्थागत स्वरूप प्रदान करने हेतु स्वयं से

प्रतिबद्ध होना था। इलिया के समन्वयन में लीज़ा इण्डिया टीम ने इस कार्यक्रम को संचालित किया।

माध्यम

यह कार्यक्रम सीखने व प्राप्त परिणामों के तीन माध्यमों– सहभागी सीख, करने के लिए सीख और आवधिक नियोजन व समीक्षा पर आधारित था। सहभागी सीख वातावरण एक माध्यम है, जिसके अन्तर्गत प्रक्षेत्र पर काम करने वाले प्रतिभागियों के विभिन्न अनुभवों से सीखा जाता था। विषय पर आवश्यक स्पष्टता प्रदान करने वाले बेहद अनुभवी एवं जानकार सन्दर्भ व्यक्तियों के महत्वपूर्ण सहयोग से व्यवहारिक सीख को भी शामिल किया गया।

दूसरा, अन्य महत्वपूर्ण माध्यम के तौर पर विशिष्ट प्रतिभागी को सौंपे गये कार्य के माध्यम से संस्था के अन्दर क्रियात्मक सीख थी। इसमें आग्रह किया गया कि प्रत्येक संस्था के अपेक्षित पृष्ठभूमि तथा क्षमता वाले व्यक्ति ही इस कार्यशाला में शामिल हों, सौंपे गये कार्य को करें और दूसरों को भी प्रशिक्षित करें। इससे दस्तावेजीकरण एवं संवाद पर संस्था के अन्दर क्षमता विकसित करने में सहायता होगी।

तीसरा, संस्थागत प्रतिबद्धता को सुनिश्चित करने व आवश्यक ध्यान को बनाये रखने के लिए कार्यक्रम में संयुक्त नियोजन एवं समीक्षा प्रकियाओं को भी जोड़ा गया। समीक्षा बैठकों में प्रतिभागियों के साथ संस्था प्रमुखों को भी शामिल करने से न केवल प्रगति की वास्तविक समीक्षा हुई वरन् कार्यक्रम के लिए आवश्यक सहयोग और प्रतिबद्धता भी सुनिश्चित हुई।

जी0ई0ए0जी0 का उदाहरण

जी.ई.ए.जी. (गोरखपुर एन्वायरन्मेण्टल एक्शन ग्रुप) एक स्वैच्छिक संगठन है, जो पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जनपद में लघु एवं सीमान्त किसान समुदायों के स्थाई विकास हेतु कार्य करता है। शोध, एडवोकेसी एवं नेटवर्किंग जैसे मुद्दों पर जी.ई.ए.जी. एक मान्यता प्राप्त संस्था है, जो उत्तर प्रदेश सहित देश के अन्य भागों में कई नेटवर्कों के साथ काम करती है। अधिक जानकारी के लिए इसकी वेबसाइट www.geagindia.org देख सकते हैं। संस्था के अध्यक्ष डॉ0 शीराज़ आगे जोड़ते हैं ''जी.ई.ए.जी. पहले भी प्रक्षेत्र आधारित कामों के सन्दर्भ में ए.एम.ई. के साथ जुड़ी रही है। जी.ई.ए.जी. को वर्ष 1990–92 में पारिस्थितिकी कृषि एवं कम बाहरी लागत तकनीकों पर ए.एम.ई. द्वारा प्रशिक्षित भी किया गया था।''

वर्ष 2002 में कन्सोर्टियम के सदस्य के तौर पर, जी.ई.ए.जी. ने नामित कर्मचारी के साथ दस्तावेजीकरण एवं संवाद कार्यक्रम (2003–2005) में भाग लिया। जी.ई.ए.जी. ने ''प्रसार सेवाओं को सशक्त करने में महिलाओं की भूमिका'' विषय को वरीयता दिया।

अपने सौंपे गये कार्य के अनुसार नवम्बर 2003 में स्रोत पर पहली कार्यशाला के बाद जी.ई.ए.जी. ने ''पूर्वी उत्तर प्रदेश में कृषिगत प्रसार में महिलाओं की सहभागिता'' विषय पर एक ड्राफ्ट दस्तावेज तैयार किया। फरवरी, 2004 में दस्तावेजीकरण पर दूसरी कार्यशाला के दौरान, प्रतिभागियों एवं सन्दर्भ व्यक्तियों द्वारा तैयार दस्तावेज का गहन विश्लेषण किया। इस विश्लेषण से दस्तावेज के अन्दर की कमियों, विसंगतियों एवं अस्पष्टताओं की पहचान करने में मदद मिली। ये कार्यशालाएं अत्यधिक सघन थीं और इसमें समूह के साथ–साथ सन्दर्भ व्यक्तियों द्वारा किये गये प्रयासों के साथ ही व्यक्तिगत प्रतिभागियों की ''सहकर्मी समीक्षा'' को शामिल किया गया था।

इस कार्यशाला के दौरान प्राप्त सीखों के आधार पर, संस्था ने वापस जाकर अपने दस्तावेज को संशोधित कर यथासंभव पूरा करने का प्रयास किया। सितम्बर, 2004 में संवाद पर आयोजित तृतीय कार्यशाला के दौरान विविध सूचना उत्पादों में इस संशोधित दस्तावेज को ''पुनः व्यवस्थित'' करने का प्रयास किया गया। इस कार्यशाला के दौरान विशिष्ट संदेशों एवं लक्षित दर्शकों के लिए उपयुक्त संचार माध्यमों और मीडिया की पहचान व आकलन करने की क्षमता प्राप्त करने से सम्बन्धित सीखों पर ध्यान दिया गया। कार्यशाला से प्राप्त सीखों के आधार पर संस्था ने गांवों में जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से ''कृषिगत भूमि पर महिलाओं के अधिकार'' पर एक पोस्टर तथा वीडियो फिल्म के रूप में संवाद उत्पाद तैयार किया।

दस्तावेज और संचार के विभिन्न पहलुओं पर संस्था स्टाफ के ज्ञान और कौशल को विकसित करने की दृष्टि से यह कार्यक्रम सफल रहा। किसी विशिष्ट अनुभव या प्रक्रिया पर एक ''पूर्ण दस्तावेज'' तैयार करने के लिए विभिन्न दृष्टिकोणों, तथ्यों और सामाजिक, तकनीकी व मानव पहलुओं पर अब बेहतर स्पष्टता थी।

एडवोकेसी हेतु एक उपकरण के तौर पर

जी.ई.ए.जी. ने इन कार्यशालाओं से तैयार की गयी गति को एक कदम आगे बढ़कर स्थाई बनाये रखा।

उन्होंने अपने उदाहरण ''प्रसार सेवाओं को सशक्त करने में महिलाओं की भूमिका'' का उपयोग किया। एडवोकेसी के एक उपकरण के तौर पर इसको बहुत अच्छी प्रतिक्रिया मिली। जी.ई.ए.जी. ने इसके आधार पर एक पॉलिसी पेपर तैयार कर प्रधान सचिव (कृषि), उत्तर प्रदेश राज्य सरकार के साथ साझा किया। क्षेत्रीय एवं राज्य स्तर पर कृषिगत प्रसार में महिलाओं से सम्बन्धित होने वाली चर्चाओं एवं बैठकों में इसका प्रयोग स्टेटस पेपर के तौर पर भी किया गया। कृषि प्रसार में महिला किसानों की दुर्दशा का मुद्दा उठाना, उन्हें महिला किसान के रूप में मान्यता मिलना और नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आदि कुछ ऐसी उपलब्धियां हैं, जिनसे प्रसार में महिला किसानों की भूमिका को मान्यता प्राप्त होती है।

जी.ई.ए.जी. के अध्यक्ष डॉ0 शीराज़ अ0 वजीह का कहना है – ''इस केस स्टडी के पूर्ण होने के बाद भी महिला किसानों की पहचान एवं अधिकार के लिए जमीनी स्तर पर काम करने हेतु सीखने की प्रक्रिया में सक्रियता आवश्यक है। इसे ही ध्यान में रखते हुए वर्ष 2006 में ''आरोह'' नाम से उत्तर प्रदेश में एक अभियान चलाया गया। इस अभियान में उत्तर प्रदेश में पांच क्षेत्रों के सभी 70 जनपदों से लगभग 200 स्वैच्छिक संगठनों तथा समुदाय आधारित संगठनों का जुड़ाव रहा। इस अभियान को राज्य एवं देश स्तर पर मान्यता मिली, जिससे उत्तर प्रदेश के नियम एवं कानून में उल्लेखनीय बदलाव करने में भी सहायता मिली।''

इसके अतिरिक्त महिला किसानों पर केन्द्रित एक डाक टिकट भी परिणाम के रूप में सामने आया। महिलाओं द्वारा कृषि में पूरे वर्ष किये जाने वाले कार्यों को ध्यान में रखते हुए ये सभी गतिविधियां सम्पादित की गयीं। प्रभाव से प्रेरित होकर महिला किसानों के मुद्दे से जुड़ी नयी परियोजनाएं एवं नवाचार शुरू किये गये।

इसके बाद, जी.ई.ए.जी. में दस्तावेजीकरण एवं संवाद प्रयासों में गुणवत्ता एवं संख्या दोनों क्षेत्रों में बहुत वृद्धि हुई है। सूचना उत्पादों से तैयार सामग्री में वृद्धि, सामग्री के साथ ही प्रस्तुतिकरण की गुणवत्ता में सुधार इस बात के प्रमाण हैं। इसके साथ ही सार्वजनिक डोमेन में अनुभवों को साझा करने के प्रयासों में भी वृद्धि हुई है।

> एक महत्वपूर्ण सीख यह रही कि दस्तावेजीकरण एक नियोजित व निरन्तर चलने वाली मुख्य संस्थागत प्रक्रिया है, जिसे व्यवस्थित व नियमित तरीके से किया जाना चाहिए। अन्यथा विभिन्न स्तरों पर वास्तविक सूचनाएं भूल जाती हैं।
>
> जी0ई0ए0जी0 स्टाफ

इससे पहले, स्थानीय नवाचारों तथा समाचारों पर केन्द्रित एक हिन्दी पत्रिका ''वसुन्धरा'' का प्रकाशन जी.ई.ए.जी. द्वारा किया जाता था। बाद में लीज़ा इण्डिया पत्रिका की पहुंच देश के सबसे बड़े पाठक वर्ग हिन्दीभाषी क्षेत्रों तक बढ़ाने के उद्देश्य से इसके हिन्दी अंक को प्रकाशित करने की मुख्य जिम्मेदारी भी जी.ई.ए.जी. ने संभाली। वर्तमान में जी.ई.ए.जी. हिन्दी भाषा में लीज़ा इण्डिया सहित तीन पत्रिका, 15 वार्षिक रिर्पोट तथा अध्ययन, शोध प्रपत्र, बुकलेट, मैनुअल, परियोजना आधारित थीम पेपर, वीडियो सहित 400 से भी अधिक दस्तावेजों का प्रकाशन कर चुका है।

विश्लेषण एवं निश्कर्ष

उत्तर भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रक्षेत्र स्तर पर कृषि–पारिस्थितिकी को बढ़ावा देने, इस हेतु राज्य एवं राष्ट्र स्तर पर एडवोकेसी करने तथा विभिन्न क्षेत्रों में विकासात्मक कार्यक्रमों को संचालित करने के सन्दर्भ में जी.ई.ए.जी. नेटवर्क एक प्रमुख संस्था है। 2003–05 में क्षमता निर्माण कार्यक्रम ने इसके उद्देश्यों, दृष्टि, दस्तावेजीकरण की गुणवत्ता एवं पहुंच को बढ़ाने में बेहतर योगदान दिया और इसके कामों से जानकारियों, विश्लेषण, समेकन व साझा करने में अच्छी गुणवत्ता बनाये रखने की इसकी प्राथमिकता प्रदर्शित होती है। प्रक्षेत्र स्तर पर घटित होने वाले तथ्यों को आंकड़ों सहित एकत्र कर उसका उपयोग नीतियों को प्रभावित करने, नये विकासात्मक कार्यक्रमों जैसे– पेरी अरबन कृषि, जलवायु परिवर्तन के प्रति स्थानीय अनुकूलन आदि को क्रियान्वित करने, शिक्षाविदों तथा सरकारी कार्यक्रमों में बहस शुरू करने हेतु साक्ष्य के तौर पर किया जाता है। लीज़ा इण्डिया हिन्दी अंक के प्रकाशन के माध्यम से कृषि–पारिस्थितिकी सम्बन्धी अभ्यासों तथा पारिवारिक कृषि अभियान को हिन्दी भाषी समुदायों तक पहुँचाने व प्रचलन में लाने का काम संस्था द्वारा बखूबी किया जा रहा है।

■

के०वी०एस० प्रसाद
कार्यकारी निदेशक
ए.एम.ई. फाउण्डेशन, बंगलौर- 560-085
वेबसाइट : www.amefound.org

Agroecology- Measurable and Sustainable
LEISA INDIA, Vol 9, No.3, Sept. 2016

पपीते की वैज्ञानिक विधि से उन्नत खेती

महेन्द्र चौधरी, राजमणि, अंशुमान श्रीवास्तव एवं आर.एन. मौर्या

पपीता से बहुत से मूल्यवर्धक पदार्थ जैसे जैम, कैण्डी, नेक्टर व पेय पदार्थ तथा कच्चा पपीता से प्राप्त पपेन नामक पदार्थ से सौन्दर्य प्रसाधन का सामान बनाने के अतिरिक्त औषधि का भी काम लिया जाता है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिक विधि से पपीते की खेती कर लघु, सीमान्त व महिला किसानों आर्थिक दृष्टि से सशक्त बन सकते हैं।

पपीता बहुत ही कम समय में तैयार होने वाला उपयोगी, स्वादिष्ट एवं विटामिन ए, सी, और ई से भरपूर फल है जिसका उपयोग हम कच्चे तथा पके दोनों रूपों में करते है। पपीते के फल में पपेन नामक पदार्थ तथा महत्त्वपूर्ण पाचक एंजाइम तत्व पाया जाता है। पपेन का अनेक महत्वपूर्ण उपयोग होने के कारण पपीता की खेती व्यवसायिक रूप से बहुत ही लाभकारी है। यह कम समय, कम लागत, कम क्षेत्र में अधिक पैदावार व अधिक आय देती है। बड़े पैमाने पर पपीते की खेती करने हेतु नीचे दी गयी जानकारियां काफी उपयुक्त होंगी–

जलवायु व भूमि

पपीते की अच्छी खेती उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में होती है लेकिन समशीतोष्ण क्षेत्रों में भी इसकी अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। पपीते की खेती के लिए गर्म, नमी युक्त जलवायु सबसे अच्छी होती है परन्तु अधिक नमी फलों के लिए हानिकारक होती है। पपीता सभी प्रकार की मिट्टी में उगाया जा सकता है। लेकिन इसकी अच्छी खेती जीवांशयुक्त उपजाऊ एवं उचित जल निकास वाली 6.5 से 7.5 पी एच मान वाली समतल दोमट एवं बलुई दोमट भूमि में होती है।

उन्नतिशील प्रजाति व बीज की मात्रा

डायोसियस प्रजाति : सीओ–1, सीओ–2, सीओ–5, सीओ–6, पूसा ड्वार्फ, पूसा जियांत, पूसा नन्हा, पन्त पपीता–1 आदि। इस प्रजाति की खेती हेतु एक हेक्टेयर में 400–500 ग्राम बीज पर्याप्त होते हैं।

गाइनोडायोसियस प्रजाति : सीओ–3, सीओ–7, पूसा मेजेस्टी, कुर्ग हनी ड्यू, अर्का सूर्या, सनराइज सोलो, ताईवान आदि। एक हेक्टेयर में इस प्रजाति के 250–300 ग्राम बीजों की आवश्यकता होगी।

पौधशाला का निर्माण

पपीते के पौधों को 3 मी. लम्बी, 1 मी. चौड़ी तथा 15 सेमी. ऊँची क्यारी, गमले या पालीथीन बैग में तैयार करते हैं। पौधशाला में बुआई से पहले बीज को 10 प्रतिशत फार्मेल्डीहाइड के घोल का छिड़काव करके उपचारित करते हैं। इसके उपरान्त 1–2 सेमी. गहराई एवं 10 सेमी. दूरी पर बीज की बुआई करते हैं। लगभग 60–70 दिन बाद पौधे रोपने योग्य हो जाते हैं।

गड्ढे की तैयारी तथा पौधरोपण

पौध लगाने से पहले खेत को अच्छी तरह से तैयार कर लेना चाहिए। 50×50×50 सेमी. आकर के गड्ढे 1.6×1.6 या 1.8×1.8 मीटर की दूरी पर खोदना चाहिए। प्रत्येक गड्ढे में 30 ग्राम बीएचसी तथा 10 ग्राम ईस्ट मिलाकर उपचारित कर लेना चाहिए। पौध लगाने के उपरान्त गड्ढे को ढक देना चाहिए जिससे पौधे में पानी ना लगे। भारत में पपीता की रोपाई तीन मौसमों जून–जुलाई में, सितम्बर–अक्तूबर में तथा जनवरी–मार्च में रोपाई की जाती है। इसलिए रोपाई से 60–70 दिन पहले पौध तैयार किये जाते हैं। दक्षिण भारत में पपीते की रोपाई साधारणतः फरवरी–मार्च में की जाती है। खेत में पौधों की रोपाई दोपहर के बाद 3–4 बजे तक करनी चाहिए। तैयार किये गए गड्ढो में 2–3 पौधे थोड़ी–थोड़ी दूरी पर लगाना चाहिए। पौधों के जड़ पकड़ने तक प्रतिदिन शाम के समय हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। फूल आने पर 10% नर पौधों को छोड़कर सभी नर पौधों को उखाड़ देना चाहिए।

खाद, उर्वरक व सिंचाई प्रबन्धन

पपीता बहुत जल्दी फल देना शुरू कर देता है इसलिए अच्छी फसल लेने के लिए 20–25 किग्रा. सड़ी हुई गोबर की खाद व 250 ग्रा.नाइट्रोजन, 500 ग्रा.फॉस्फोरस व 500 ग्रा.पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्ष देना चाहिए। नाइट्रोजन की मात्रा को 5–6 बार में

2–2 महीनों के अन्तराल पर डालना चाहिए। फॉस्फोरस और पोटाश की आधी–आधी मात्रा पौधों को देनी चाहिए। उर्वरकों को पौधे के तने से लगभग 30 सेमी. की दूरी पर पौधे के चारों ओर बिखेर कर मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देना चाहिए। तत्पश्चात् हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। पपीते की अच्छी खेती के लिए गर्मी के मौसम में 7–8 दिन के अन्तराल पर, जाड़े के मौसम में 12–15 दिन के अन्तराल पर तथा के मौसम में बारिश न होने पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। सिंचाई करते समय ध्यान रखना चाहिए कि पानी पौधे के तने के सम्पर्क में न आने पाए अन्यथा पौधे में गलन की बीमारी लगने की सम्भावना बढ़ जाती है।

मिट्टी चढ़ाना

पपीते के पौधों पर मिट्टी चढ़ाना बहुत ही आवश्यक क्रिया है। पौधों की जड़ों के पास लगभग 30 सेमी. की गोलाई में मिट्टी चढ़ाना चाहिए। मिट्टी चढ़ाने से तेज हवाओं से सुरक्षा मिलती है और पौधे गिरने से बच जाते हैं।

रोग प्रबन्धन

आर्द्र गलन रोग : यह पौधशाला में लगने वाला गम्भीर रोग है। इस रोग का कारक पीथियम एफैनीडरमेटम है। जिसका प्रभाव नए अंकुरित पौधों पर होता है। इस रोग में पौधे का तना प्रारम्भिक अवस्था में ही गल जाता है और पौधा मुरझाकर गिर जाता है। **नियंत्रण:** पौधशाला के आस–पास जल निकास की उचित व्यवस्था करनी चाहिए ताकि जल जमाव न हो। साथ ही बीज की बुवाई से पहले बीज तथा मिट्टी दोनों का उपचार करना चाहिए।

तना तथा जड़ सड़न रोग : इस रोग में तने निचले भाग के छाल पर जलीय (गीले) चकत्ते बनते हैं जो बाद में तने के चारों ओर फैल जाते हैं। तने का ऊपरी छिलका पीला होकर गलने लगता है तथा जड़ भी गलने लगती है। पौधे की पत्तियाँ पीली होकर सूख जाती हैं और पौधा गलकर मर जाता है। **नियंत्रण** : इस बीमारी से बचाव के लिए उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। ग्रसित पौधे को उखाड़कर फेंक देना चाहिए।

फल सड़न रोग: यह पपीते के फल का प्रमुख रोग है। ये कोलेटोट्रोईकम ग्लियोस्पोराइड्स व अन्य कवक के द्वारा होता है। यह रोग अधपके व पके फल में लगता है। इस रोग में फलों के ऊपर छोटे गोल गीले धब्बे बनते हैं। धब्बे बाद में बढ़कर आपस में मिल जाते हैं तथा इनका रंग भूरा या काला हो जाता है। जिसके कारण फल पकने से पहले ही गिर जाते हैं।

नियंत्रण : इस बीमारी से बचाव के लिए उचित जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए। ग्रसित पौधे को उखाड़कर फेंक देना चाहिए।

वलय रोग : इस रोग का कारक पपाया वलय चित्ती विषाणु है। इस रोग में पपीते की पत्तियाँ कटी–फटी सी हो जाती हैं और गाँठ पर कटे–फटे पत्ते निकलते हैं। पत्तियों के तने पर छोटे गोलाकार धब्बे बन जाते हैं और पौधे की वृद्धि रुक जाती है। पत्ती का डंठल छोटा हो जाता है और पुरानी पत्तियाँ गिर जाती हैं। पत्तियाँ छोटी और फफोलेदार हो जाती हैं। फूल कम लगते हैं फल का आकर छोटा रह जाता है। **नियंत्रण:** रोगी पौधे को उखाड़कर जला देना चाहिए नीम की खली एवं नीम के तेल प्रयोग करने से रोग की रोकथाम होती है। पपीते के खेत के आस–पास कद्दू कुल के पौधे नहीं होने चाहिए।

पर्ण कुंचन रोग: यह पपीते का एक गंभीर विषाणु रोग है। इस रोग के कारण शुरुआत में पौधे का विकास रुक जाता है और पत्तियाँ गुच्छानुमा हो जाती हैं तथा पत्तियों का आकार छोटा हो जाता है। पत्तियों का सिरा अन्दर की ओर मुड जाता है तथा पौधे में फूल एवं फल नहीं लगते हैं। **नियंत्रण:** रोगी पौधे को उखाड़कर जला देना चाहिए। सफेद मक्खी के नियंत्रण के लिए डाइमीथोएट 1 मिली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर छिडकाव करना चाहिए।

फलों की तुड़ाई व उपज

पपीते का फल पौधे लगाने के 9–10 महीने बाद तुड़ाई करने योग्य हो जाता है। फलों का रंग जब गहरे हरे रंग से परिवर्तित होकर हल्का पीला होने लगे तथा फलों पर नाखून लगाने पर दूध की जगह पानी या तरल पदार्थ निकालने लगे तो समझना लेना चाहिए की फल तुड़ाई योग्य हो गया है। फलों को सावधानी से तोड़ना चाहिए जिससे फलों को किसी प्रकार चोट, दाग या धब्बे ना लगे नही तो फल सड़कर खराब हो जाते हैं। पपीते की अच्छी पैदावार हमारे जलवायु, मिट्टी की किस्म, प्रजाति तथा उचित देखभाल तथा समुचित प्रबन्ध पर निर्भर करती है। पपीते की औसत उपज लगभग 35–50 किग्रा. फल प्रति पौधा तथा 35–40 टन प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हो जाती है। ■

महेन्द्र चौधरी, राजमणि, अंशुमान श्रीवास्तव, आर.एन. मौर्या
किसान काल सेण्टर, कृषि मंत्रालय भारत सरकार
ईमेल : anshumanbasti@gmail.com

फोटो : अभिजीत मोहन्ती

अपने मिश्रित खेत में उगे लौकी को दिखाता एक किसान

किसान विद्यालय

कृषिगत ज्ञान हेतु व्यवहारिक प्रयोगशाला

अभिजीत मोहन्ती एवं रंजीत साहू

किसान विद्यालय किसानों एवं सन्दर्भ व्यक्तियों के बीच में आपस में ही सीखने का एक मंच प्रदान करता है। आपसी मेल-जोल, चर्चा एवं व्यवहारिक प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों के पारम्परिक ज्ञान को पुनर्जीवित करने तथा स्थाई बनाये रखने का यह एक अवसर है, जिसे आधुनिक विज्ञान के माध्यम से और उन्नत किया जा रहा है।

भारत में उड़ीसा राज्य के दक्षिणी भाग में पड़ने वाले जिले सर्वाधिक पहाड़ी क्षेत्र वाले व वर्षा आधारित ऊँची भूमि वाले जिले हैं। इन जिलों में औसत वार्षिक वर्षा 1200–1400 मिमी0 के बीच होती है। खाद्य फसलों के लिए इन क्षेत्रों के आदिवासी समुदायों की निर्भरता वन आधारित आजीविका एवं हस्तान्तरित खेती पर होती है। इस क्षेत्र की मुख्य फसलें मोटे अनाज, दलहन, अनाज एवं चना तथा तिलहन हैं। लेकिन, पिछले दो दशकों में, विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु वनों के अत्यधिक कटान से इन आदिवासी समुदायों की आजीविका बुरी तरह प्रभावित हुई है। इसके साथ ही बारिश की पद्धति में बदलाव के कारण मृदा अपरदन तथा निचले क्षेत्रों में बालू जमा हो जाने के कारण हस्तान्तरित खेती में भी मुश्किलें आने लगी हैं।

रसायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों के अत्यधिक प्रयोग से मृदा की प्राकृतिक उर्वरता में ह्रास हुआ है और खेती की लागत बढ़ी है। इन सब कारणों से विशेषकर फसल नष्ट होने की स्थिति में किसान कर्ज के मकड़जाल में फंसता जा रहा है। इस क्षेत्र में स्थानीय फसलों की उपेक्षा कर नगदी फसलों को प्रोत्साहित करने हेतु सरकार द्वारा कृषि के विकास के लिए चलायी जा रही अधिकांश परियोजनाएं स्थिति को और भी बिगाड़ रही हैं। ये स्थानीय फसलें

स्थानीय अर्थ व्यवस्था के लिए काफी महत्वपूर्ण थीं और इनसे समुदायों की खाद्य के साथ–साथ पोषण आवश्यकता भी पूरी होती थी परन्तु बड़े पैमाने पर हाइब्रिड बीजों तथा एकल फसल पद्धति का उपयोग करने के कारण खेती एवं बीज संसाधनों से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान विलुप्त होते जा रहे हैं।

यात्रा

अग्रगामी एक स्वैच्छिक संगठन है, जो उड़ीसा के आदिवासी एवं अन्य सीमान्त समुदायों के विकास के लिए प्रतिबद्ध है। यह संस्था जैव–विविधता संरक्षण तथा समुदायों की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु कृषि–पारिस्थितिकी मॉडलों को प्रोत्साहित करने का काम करती है। इसने दो विकासखण्डों काशीपुर और थुआमलरामपुर में किसान विद्यालय जैसे ज्ञान सशक्तिकरण प्रक्रिया के माध्यम से समुदायों के साथ काम करना प्रारम्भ किया।

खेती से सम्बन्धित महत्वपूर्ण मुद्दों की पहचान तथा उन पर चर्चा करने के लिए किसानों के साथ कई बैठकें आयोजित की गयीं। सफल कृषि पारिस्थितिकी मॉडलों पर आधारित विभिन्न डाक्यूमेण्ट्री फिल्में दिखाई गयीं व एक्सपोजर विजिट कराया गया। इससे किसानों को प्रक्षेत्र आधारित अनुभव प्राप्त हुए तथा विभिन्न क्षेत्रों के किसानों के साथ सघन बैठकें कर आपस में सीखने की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी। इन गतिविधियों से एक तरफ तो किसानों के बीच जानकारियां साझा होने लगीं तो दूसरी तरफ उनमें आपस में पारम्परिक बीजों, खेती पद्धतियों, खाद्य विविधता तथा उनकी सांस्कृतिक गतिविधियों के ऊपर भी चर्चा होने लगी।

किसान विद्यालयों में ज्ञान का निर्माण

गांव स्तर पर स्थापित किसान विद्यालय कृषि–पारिस्थितिकी पर ज्ञान निर्माण एवं जानकारियां आदान–प्रदान करने का एक ऐसा मंच था, जहां पर आस–पास के 5–7 गांवों के किसान मिलते थे,

खेत से प्रयोगशाला और प्रयोगशाला से खेत तक की विचारधारा पर आधारित यह माध्यम तभी सफल हो सका, जब किसानों और वैज्ञानिकों ने एक साथ मिलकर काम किया।

फोटो : अभिजीत मोहन्ती

मिश्रित खेती के माध्यम से पारम्परिक मोटे अनाजों को पुर्नजीवन

एक–दूसरे से चर्चा करते थे और खेती से सम्बन्धित समस्याओं का स्थानीय समाधान निकालते थे। वे विभिन्न विषयों जैसे मृदा, जल एवं पोषण प्रबन्धन की पारम्परिक पद्धति, बीज प्रजातियों, फसल बुवाई, कीट नियन्त्रण, चारागाह एवं चारा प्रबन्धन आदि के ऊपर व्यवहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करते थे ताकि जैव विविधता संरक्षित रहे।

किसानों के साथ बात–चीत करने के माध्यम से बहुत सी देशज गतिविधियों को दस्तावेजित किया गया। किसान विद्यालय सत्रों के दौरान किसानों द्वारा किये गये प्रक्षेत्र प्रदर्शनों की एक लम्बी श्रृंखला के माध्यम से इन दस्तावेजित गतिविधियों को प्रमाणित किया गया। किसानों ने प्राप्त परिणामों को देखा और कुछ परिवर्तनों के साथ इन देशज गतिविधियों को अपने खेत में अपनाने का निश्चय किया।

उदाहरण के लिए, अनाजों को सुरक्षित रखने के लिए नीम की पत्तियों को मिलाने की देशज पद्धति को किसान विद्यालय में संशोधित करते हुए फंफूद एवं चींटियों से बचाव हेतु इसमें नीम के साथ कमज एवं अमारी की पत्तियों को भी शामिल किया गया। परिणामतः लम्बे समय तक और अधिक सुरक्षित भण्डारण हुआ। जानकारी के सम्पूर्ण चक्र को चित्र संख्या 1 के माध्यम से दर्शाया गया है, जहां कई तरीकों से प्राप्त सूचना एवं ज्ञान से सीखने की प्रक्रिया बताई गयी है।

इन पुरानी प्रजातियों को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता को महसूस करते हुए कुछ चुनिन्दा फसलों जैसे– धान, मोटे अनाजों, दलहनों एवं

स्थानीय सब्ज़ियों का प्रक्षेत्र परीक्षण किसानों द्वारा किया गया। किसानों ने उन प्रजातियों के बीजों को बढ़ाना शुरू किया, जो विलुप्त होने के कगार पर थीं और इस हेतु उन्होंने पारिस्थितिक मानचित्रण एवं एडवान्स लाइनों के चयन का उपयोग करते हुए परीक्षण के लिए आदर्श स्थानों का चयन किया।

किसान मेलों के दौरान कृषि–पारिस्थितिकी अनुभवों पर ज्ञान का आदान–प्रदान करने से उन विविध समस्याओं का व्यवस्थित तरीके से विश्लेषण सामने आया, जो किसान विद्यालयों में सामने आयी थीं। ज्ञान के इस आदान–प्रदान से वैज्ञानिकों को सफलता एवं असफलता के कारणों को समझने में सहायता मिली। बदले में, उन्होंने प्रक्षेत्र परीक्षणों को संशोधित किया और अब ये प्रक्षेत्र परीक्षण स्थानीय संसाधनों, किसानों की सामर्थ्य एवं उनकी आर्थिक स्थिति पर आधारित है।

अलग–अलग उच्च भूमि पर धान की देशज प्रजातियों जैसे – माटीधान, बोधीधान, प्रधान एवं टिप्पाधान के 150 प्रक्षेत्र परीक्षण किये गये। माटीधान की उच्च उत्पादकता, कम अवधि तथा कीट एवं व्याधियों का प्रकोप कम होने के कारण यह प्रजाति अन्य प्रजातियों की तुलना में अधिक बेहतर पायी गयी। इसके साथ ही अरहर के साथ इसकी खेती अन्य संयोजनों की अपेक्षा अधिक बेहतर भी है। किसानों ने यह भी पाया कि सब्ज़ियों की मिश्रित खेती में, सोलेनेसियस सब्ज़ियों का दलहनी फसलों के साथ बेहतर मिश्रण होता है। मक्का एवं दलहनों के बीच फसल संयोजन में दूसरी फसल के तौर पर सरसों की खेती सफल थी। वैज्ञानिकों ने भी सीखा कि किसानों को प्रक्षेत्र परीक्षण में शामिल करने से बेहतर प्रजातियों को अपनाने तथा सफल फसल संयोजन का अनुसरण करने हेतु किसानों को तैयार करने में सहायता मिली।

बीज संरक्षण के विषय में महिलाओं के पास अत्यधिक जानकारी होने के नाते 15 गांवों में अनाज व बीज बैंक स्थापित करने की गतिविधि में उन्हें शामिल किया गया। इन अनाज/बीज बैंकों का प्रबन्धन महिलाओं के जिम्मे था। वे ही यह तय करती थीं कि किस प्रजाति के बीजों को कितनी मात्रा में भण्डारित किया जायेगा। परिणामतः धान, दलहन, मोटे अनाजों, कन्दों एवं सब्ज़ियों के बीजों को भण्डारित किया गया। इन अनाज/बीज बैंकों को पौध प्रजनन शोध संस्थानों के साथ जोड़ने की प्रक्रिया चल रही है।

किसानों के लिए नयी सीख

किसानों ने सीखा कि एकल खेती पद्धति में कीटों एवं व्याधियों का प्रकोप अधिक होता है, क्योंकि इसमें प्रकृति के मित्र कीटों की उपस्थिति या तो नहीं होती है या फिर बहुत कम होती है। उन्होंने कीटों के बार–बार होने वाले प्रकोप से बचने के लिए फसल विविधीकरण एवं कुछ विशिष्ट फसलों के संयोजन के महत्व को भी सीखा। अग्रगामी के साथ जुड़े एक औद्यानिक विशेषज्ञ डॉ0 देवेश प्रसाद पाधी के अनुसार, "फसलों पर तना छेदक कीट के प्रकोप को रोकने में घरेलू एवं जंगली घासों से उल्लेखनीय मदद मिलती है। मक्का/बाजरा की दो लाइनों के बीच में देसमोडियम जैसे पौधों को लगाने से तना छेदक कीट के आक्रमण को बहुत हद तक रोका जा सकता है।"

वैज्ञानिक यह महसूस करते हैं कि वैज्ञानिक तरीके से की गयी व्याख्या के कारण किसान उचित फसल संयोजन अपनाने में अधिक विश्वास करते हैं। विभिन्न मित्र कीटों, परागण तथा कीट आक्रमण के नियंत्रण के माध्यम से खाद्य उत्पादन में उनकी भूमिका के ऊपर किसानों को प्रशिक्षित एवं संवेदित किया गया। उदाहरण के लिए, किसान गोबरैला व झिंगुर को देखकर अधिक खुश हुए, क्योंकि वे शत्रु कीटों जैसे एफिड, सफेद मक्खी, घुन एवं सल्ली कीटों आदि को खा जाती हैं और फसल की क्षति होने से बचाती हैं।

ठीक इसी प्रकार, दूसरी फसल के रूप में सरसों की खेती करने वाले किसानों ने वैज्ञानिकता का समावेश करते हुए अपनी खेती पद्धति में बदलाव किया और मक्का एवं दलहनी फसलों को अपनाया। इससे उन्हें बेहतर परिणाम प्राप्त हुआ। दूसरी तरफ, वैज्ञानिकों ने आवश्यकता एवं बाजार की वर्तमान मांग पर आधारित निर्णय प्रक्रिया को किसानों से सीखा व उसे ध्यान में रखते हुए नये शोध का प्रारूप तय किया।

किसानों ने अब खेतों की बाड़ पर पौधों जैसे सिमारोउबा ग्लेसुआ, पिन्नाटा एवं कैसिया तोता को उगाना प्रारम्भ कर दिया है। जिससे एक तरफ तो जैव विविधता बढ़ी है तो दूसरी तरफ चारा एवं ईंधन तक उनकी पहुंच बढ़ी है। वे इस बात से भी खुश हैं कि बाड़ के तौर पर लगाये गये इन पौधों से तेज हवा से खेत की सुरक्षा हो रही हैं, जिससे मृदा की नमी संरक्षित रहती है।

फोटो : अभिजीत मोहन्ती

अनाज / बैंक में बहुत सी देशज बीज प्रजातियों को संरक्षित करती महिलाएं

एक साथ काम करने की आवश्यकता

कृषि–पारिस्थितिकी सघन ज्ञान प्रणाली है। यह समुदाय में पहले से ही मौजूद देशज ज्ञान को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार बनाने के लिए गहरी समझ बनाने की बात करता है। खेत से प्रयोगशाला और प्रयोगशाला से खेत की विचारधारा तभी संभव हो सकती है, जब किसान एवं वैज्ञानिक एक–दूसरे के साथ मिलकर काम करें, उनके बीच में स्थाई जुड़ाव स्थापित हो। शोध प्रक्रिया में किसानों की संलग्नता महत्वपूर्ण है, जिससे वैज्ञानिकों को पारम्परिक अभ्यासों को समझने तथा उन्हें संशोधित करने हेतु रणनीति तैयार करने में सहायता मिलती है। इन प्रक्रियाओं से प्राप्त परिणाम न केवल किसानों के लिए उचित होते हैं, वरन् ये लम्बे समय तक के लिए स्थाई भी होते हैं और इससे स्थानीय स्तर पर लघु, सीमान्त व महिला किसानों को लाभ मिलता है जो वैश्विक परिदृश्य में खाद्य व पोषण सुरक्षा का पर्याय बनता है।

आभार

इस लेख को तैयार करने में तकनीकी सहयोग एवं मुख्य बिन्दुओं को डॉ0 देवेश कुमार पाधे, वरिष्ठ कार्यक्रम सलाहकार, अग्रगामी द्वारा उपलब्ध कराया गया है। इस हेतु लेखक द्वारा उनका आभार व्यक्त करता है।

■

अभिजीत मोहन्ती
अग्रगामी
ई-मेल : abhijitmohanty10@yahoo.com
ब्लाग : developmentalternativesblog.wordpress.com

रंजीत साहू
शोध सहायक
यूनिवर्सिटी ऑफ वर्जीनिया, यू0एस0ए0
ई-मेल : sahurk9@gmail.com

Co-creation of knowledge
LEISA INDIA, Vol 18, No.1, March 2016